# *द बुक थीफ़* : किताबें, समाज और सत्ता पर विमर्श

अमित कोहली



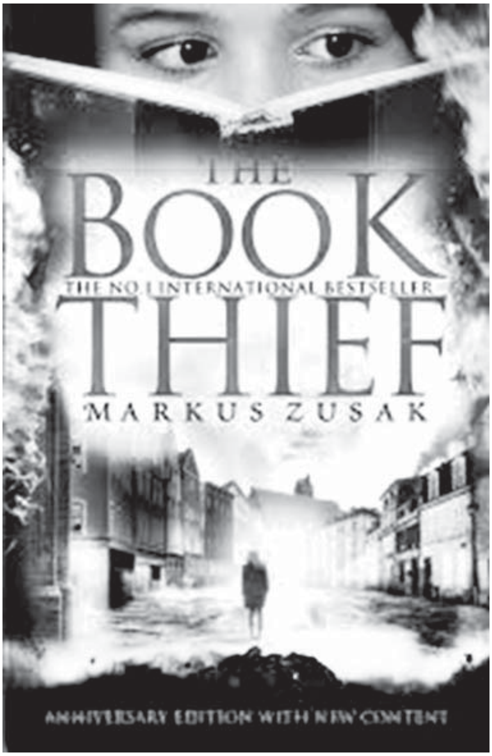

किताबें समाज का आइना होती हैं!, "किताबें ज्ञान का भण्डार हैं!", "किताबें अच्छी दोस्त होती हैं!", "किताबें दिमाग़ की ख़ुराक होती हैं!" किताबों के बारे में ऐसे जुमले अनेक बार सुने होंगे। हममें से तक़रीबन सभी की कोई पसन्दीदा किताब, कोई चहेता लेखक, कवि या विचारक होता है, जिसके लिखे को हम पढ़ना पसन्द करते हैं, साहित्य का रसास्वादन करते या पढ़कर कुछ सीखने-समझने की कोशिश करते हैं। शिक्षाकर्मी या अभिभावक के रूप में हम अकसर चाहते हैं कि हमारे विद्यार्थी / बच्चे किताबों से दोस्ती करें, उनमें पढ़ने की ललक विकसित हो और पढ़ना उनकी आदत बन जाए।

किताबों में ऐसे तमाम अनुभवों से सामना कराने की कूवत होती है जिनसे असल ज़िन्दगी में शायद हम रूबरू न हो सकें। शौक़िया पढ़ाकू हों या आदतन, किताब मिलते ही पन्ने पलटना और अगर वह दिल को छू जाए तो उसे हासिल करने, पूरी पढ़ लेने की तमन्ना होना स्वाभाविक है। इसलिए कई पढ़ाकू किताब की दुकानों में घण्टों बिताते हैं, कुछ पढ़ाकू पुस्तकालयों में वक़्त गुज़ारना पसन्द करते हैं। दोस्तों-परिचितों के बीच किताबों का लेन-देन दोस्ती निभाने का सिर्फ़ एक ज़रिया या शग़ल नहीं, क्रय शक्ति के अभाव में कई बार यह ज़रूरत भी बन जाता है। कुछ व्यक्तियों की आदत होती है कि वे किताबें पढ़कर लौटाते नहीं। चन्द लोग ऐसे भी होते हैं जो चुपके से किताबें उठा ले जाते हैं। इसे शायद हम चोरी कह सकते हैं। लेकिन, अगर कोई व्यक्ति बग़ैर पूछे किताब लेता है तो क्या वह सिर्फ़ छपाई ले रहा है जो जिल्दों के भीतर काग़ज़ पर की गई है? क्या वह चित्र और उनके

आकार, रंग और बनावट चुरा रहा है? क्या वह किताब में छपे हर्फ़ों के मायने और ख़्याल चुरा रहा है? दरअसल वह क्या चुरा रहा होता है?

*द बुक थीफ़* फ़िल्म एक ऐसी किशोरी की कहानी पर आधारित है जिसे किताबों से प्यार हो जाता है। और, यह प्यार उसकी ज़िन्दगी बदल देता है। कहते हैं न कि एक किताब ज़िन्दगी बदलने के लिए काफ़ी है। इस कहानी में भी ऐसा ही कुछ होता है। कहानी 1938 के जाड़े से शुरू होती है और 1945 तक चलती है। लीज़ल (सोफ़ी निएलीज़) अपनी माँ और छोटे भाई के साथ रेल में यात्रा कर रही होती है। यात्रा के दौरान भाई की मृत्यु हो जाती है। पटरी के पास एक क़ब्रिस्तान में उसे दफ़नाया जाता है। वहीं लीज़ल को एक किताब मिलती है – *द ग्रेवडिगर्स हैण्डबुक* (क़ब्र खोदने वाले की विवरण पुस्तिका)। वह किताब अपने पास रख लेती है। इसके बाद उसकी माँ ग़ायब हो जाती है। सरकार द्वारा जर्मनी के किसी छोटे शहर में लीज़ल को एक परिवार में दत्तक दे दिया जाता है। कहानी में आगे चलकर लीज़ल को पता चलता है कि उसकी माँ कम्युनिस्ट होने की वजह से उसे छोड़कर चली गई थी। नाज़ी जर्मनी में कम्युनिस्ट होना गुनाह था। और उसकी माँ को डर था कि उनके कम्युनिस्ट होने से उनकी बेटी को नुकसान न उठाना पड़े।

उसकी नई माँ, रोज़ा ह्यूबरमैन (एमेली वॉटसन) ऊपर से अक्खड़ लेकिन भीतर से नर्मदिल इंसान है, जबकि उसके नए पिता हॅन्स ह्यूबरमैन (जोफ़्री रश) सीधे-सादे, दयालु प्रौढ़ हैं। पड़ोस में रहने वाला रुडी स्टेनर (निको लिअर्श) लीज़ल का दोस्त बन जाता है जो स्कूल में सहपाठी भी हैं। शुरुआत में संकोची और अन्तर्मुखी नज़र आने वाली लीज़ल को अपने नए परिवार के साथ तालमेल बैठाने में कुछ दिक़्क़तें पेश आती हैं। लेकिन जैसा कि आमतौर पर वयस्क कल्पना भी नहीं कर सकते, बच्चों में परिस्थितियों के साथ– ख़ासतौर पर प्रतिकूल और चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों के साथ– सामंजस्य बैठाने की अद्भुत क्षमता होती है। वह




अपने नए पिता के दोस्ताना होने और नई माँ के कठोर होने का अहसास पा लेती है।

पहली बार जब वह रुडी के साथ चहलक़दमी करते हुए स्कूल पहुँचती है तो देखती है कि पत्थर की एक ऊँची और मज़बूत इमारत सिर ताने खड़ी है। इमारत के दरवाज़े के दोनों ओर राष्ट्रध्वज फहरा रहे हैं। उसकी नज़रें झण्डों पर जम जाती हैं और भोले चेहरे पर हल्की घबराहट और चिन्ता तैरने लगती है। परदे से उसके चेहरे का क्लोज़-अप अचानक विलोपित हो जाता है और तत्कालीन जर्मनी के राष्ट्राध्यक्ष अडोल्फ़ हिटलर की तस्वीर परदे के केन्द्र में प्रकट होती है, जिसे राष्ट्रध्वज के तोरण से सजाया गया है।

स्कूल का पहला ही दृश्य दो सम्बन्धों को रेखांकित करता है, स्कूल और राष्ट्र का सम्बन्ध व राष्ट्र और शासक का सम्बन्ध। यहाँ ज्ञान के केन्द्र पर तानाशाह शासक क़ाबिज है। कक्षा में शिक्षिका उसका नाम पूछती हैं और श्यामपट्ट

पर लिखने का आदेश देती हैं। लीज़ल अपने बाएँ हाथ से बोर्ड पर तीन क्रॉस बनाती है। कक्षा में ठहाके गूँजने लगते हैं। ज़ाहिर है कि वह लिखना नहीं जानती।

बाल-केन्द्रित शिक्षण व रचनावाद के आगमन से पहले माना जाता था कि कक्षा का ढाँचा एक साँचे की तरह होता है, जिसमें विद्यार्थी को गीली मिट्टी बनकर आकार ग्रहण करना होता है। कक्षा का माहौल और संस्कृति उस भट्टी के समरूप माने जाते थे जो साँचे में क़ैद गीली मिट्टी को तपाकर ठोस आकार देती है। लीज़ल की कक्षा ठीक वैसी ही है। हालाँकि रचनावादी नवाचारों ने स्कूली शिक्षा के उस ढाँचे को ख़ारिज करने की कोशिशें की हैं, लेकिन अनेक शिक्षक, शिक्षाविद्, नीति निर्माता और अभिभावक उस तरह की शिक्षण प्रक्रिया को आज भी उचित, उपयोगी और प्रभावी मानते हैं।

कक्षा के बाहर लीज़ल का मज़ाक़ उड़ाया जाता है। इसपर वह एक सहपाठी को बुरी तरह पीटती है। कुछ देर बाद रुडी से उस घटना पर बात करते हुए वह एक मार्मिक बात कहती है, "मैं पढ़ना-लिखना नहीं जानती, इसका मलतब यह नहीं कि मैं मूर्ख हूँ।"

हम जानते हैं कि शिक्षा का दायरा अक्षरज्ञान से परे, व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास तक फैला हुआ है। यह भावी वयस्क को समाज के एक उपयोगी सदस्य और राष्ट्र के एक विचारशील नागरिक बनने में मदद करने का भी है। विद्यार्थियों की इस शिक्षण-प्रक्रिया में सामाजिकता, मूल्यबोध, जिज्ञासा, तार्किक चिन्तन, समस्याओं से जूझना, भावनात्मक विकास जैसे तमाम तत्त्व अन्तर्भूत हैं जो उन्हें एक वयस्क के रूप में सार्थक और सन्तुष्ट ज़िन्दगी जीने में मदद करते हैं। साक्षरता इसका एक छोटा-सा हिस्सा है।

उसी रात नया पिता हॅन्स उससे बात करता है। सीने से चिपकी किताब देखकर हॅन्स को जिज्ञासा होती है और वह किताब के पन्ने पलटकर देखने लगता है। जब वह उस किताब के बारे में पूछता है तो पहले तो लीज़ल कहती है कि यह किताब उसकी है। दूसरी बार पूछने पर वह कहती है, "यह किताब हमेशा से मेरी नहीं थी।"

जिसे हम ज्ञान मानते हैं, वह गतिशील है, वर्धमान है। लीज़ल के कथन– "यह किताब हमेशा से मेरी नहीं थी।" – में 'किताब' की जगह 'ज्ञान' रखकर हम कह सकते हैं कि ज्ञान किसी एक का नहीं होता, स्थिर और जड़ नहीं होता। वह अलग-अलग लोगों के बीच होने वाली अन्तर्क्रियाओं के ज़रिए अनवरत रूपान्तरित और विकसित होता रहता है। लेकिन जब हम स्कूल नामक संस्था की चहारदीवारी में क़दम रखते हैं, वहाँ के माहौल, प्रक्रियाओं और पाठ्यपुस्तकों, परीक्षाओं वग़ैरह की पड़ताल करते हैं तो ज्ञान को स्थिर मनवाने की ज़िद दिखाई देती है। ऐसे बहुत कम स्कूल हैं जो समस्त शालेय प्रक्रियाओं में रचनावादी नवाचारों पर अमल कर पाते हैं।





किताब के अर्थबोध की बात की जाए, तो हर पाठक मायनों की रचना करने के लिए आज़ाद होता है। दरअसल, ऐतिहासिक रूप से वही किताब अमर या क्लासिक होने का दर्जा पा सकी है जिसने समय और स्थान की सीमाओं से परे जाकर पाठकों को नए अर्थ खोजने और गढ़ने की आज़ादी दी है। इस रूप में किताब, भले ही उसके हर्फ़, जिल्द और रंग-रूप हज़ारों प्रतियों में एक जैसे हों; हर पाठक उसे पढ़ते हुए, यानी अन्तर्क्रिया करते हुए, नए रूप में देखता-समझता है। इस प्रक्रिया में हर पाठक एक तरह से किताब को पुनर्सृजित कर रहा होता है। लीज़ल हमें याद दिलाती है कि किताब किसी एक की नहीं होती, न किसी एक लेखक की और न ही किसी एक पाठक की।

उसी रात हॅन्स को पता चलता है कि लीज़ल पढ़ नहीं सकती। वह उसके पास मौजूद इकलौती किताब *द ग्रेवडिगर्स हैण्डबुक* के ज़रिए पढ़ाना शुरू करता है, धीरे-धीरे लीज़ल को पढ़ने में मज़ा आने लगता है और वह किताबों की दीवानी हो जाती है। एक विवरण-पुस्तिका भी किसी बच्ची में पढ़ने की ललक जगाने के लिए पर्याप्त हो सकती है!

रोज़ाना रात को सोने से पहले वे कुछ पन्ने पढ़ते हैं। किताब एक बार पूरी पढ़ना हो जाने के बाद लीज़ल उसे फिर पढ़ना चाहती है। हॅन्स उसे टालकर एक सरप्राइज़ देता है। वह उसे घर के तहख़ाने में ले जाता है। वहाँ दीवारों पर वे तमाम नए शब्द लिखे होते हैं जो किताब में उन्होंने सीखे थे। हॅन्स यहाँ एक विचारशील शिक्षक की भूमिका में नज़र आता है। जिज्ञासु विद्यार्थी के लिए किसी किताब को पढ़कर ख़त्म करने का रोमांच अद्‌भुत होता है। कई बार विद्यार्थी आग्रह करने लगते हैं कि वही किताब फिर पढ़ी जाए। ज़ाहिर है कि वे उस रोमांच को फिर-फिर पाना चाहते हैं, अधिकाधिक बार अनुभव करना चाहते हैं। लेकिन, विचारशील शिक्षक के लिए ज़रूरी है कि वह विद्यार्थी को नए अनुभव दे, नई चुनौतियों से सामना कराए। यहाँ वायगोत्स्की याद आते हैं। लीज़ल द्वारा निकट विकास क्षेत्र की एक पायदान पर चढ़ जाने के बाद हॅन्स स्कैफ़फ़ोल्डिंग करते हुए उसके अधिगम का अपेक्षित स्तर थोड़ा और ऊँचा करते हुए उसके सामने एक रोचक चुनौती पेश करते हैं। वह यहाँ किसी अभिभावक से कहीं ज़्यादा, एक जागरूक शिक्षक के रूप में नज़र आते हैं।

स्कूल में अकादमिक और ग़ैर-अकादमिक जो भी प्रक्रियाएँ होती हैं, वे समाज में घटित हो रही प्रक्रियाओं से अलहदा नहीं होतीं। स्कूल

और समाज दोनों एक दूसरे से जुड़े होते हैं और एक दूसरे पर असर डालते हैं, एक दूसरे को लगातार बदलते रहते हैं। इसे हम अपने आसपास के अनुभवों से जोड़कर देख सकते हैं। इसलिए शिक्षा से सरोकार रखने वाले लोगों के लिए सचेत और संवेदनशील रहने की ज़रूरत है, ताकि वे अपने विद्यार्थियों में शालेय प्रक्रियाओं और समाज की घटनाओं के प्रति आलोचनात्मक चिन्तन विकसित करने में मदद कर सकें। हालाँकि लीज़ल का स्कूल ऐसा कुछ नहीं करता, बल्कि समाज और शासन के प्रभाव को यथावत आत्मसात करके विद्यार्थियों तक वही मूल्य हस्तान्तरित करने की कोशिश करता नज़र आता है।

फ़िल्म में एक घटना अप्रैल 1939 की है। जर्मन राष्ट्र के नेता (फ़्यूरर) का जन्मदिन है। हर घर पर राष्ट्रध्वज फहरा रहा है। बच्चे-बूढ़े सभी लोग जलसे में शामिल होने के लिए तैयार होकर निकलते हैं। मंच से मेयर भाषण दे रहा है, 'राष्ट्र की उन्नति के लिए हम अपना नैतिक और बौद्धिक शुद्धिकरण करने के लिए प्रतिबद्ध हैं। शिक्षा, रंगमंच, सिनेमा, साहित्य, समाचार माध्यम– ये राष्ट्र का विशिष्ट व्यक्तित्व गढ़ने वाले आधारस्तम्भ हैं।" सामने खड़ी जनता हुँकार भरती है। मंच से भाषण जारी रहता है, "आज रात हम यहाँ इसीलिए इकट्ठे हुए हैं कि हम ख़ुद को बौद्धिक गन्दगी से मुक्त करें!" तभी, मशाल थामे दो सैनिक आगे बढ़ते हैं और किताबों के विशाल ढेर को जला देते हैं। जनता हर्षध्वनि से इस कृत्य का समर्थन करती है।



इस बीच रुडी और लीज़ल का एक सहपाठी, जो बाल सैनिक है, उन्हें एक-एक किताब थमाकर जलाने को कहता है। वह लीज़ल से यह भी कहता है कि तुम्हारी माँ कम्युनिस्ट है, राष्ट्र की दुश्मन है। ज़ाहिर है कि बाल सैनिक ने यह बात स्कूल, समाज और शासन के उस वृत्तान्त से ग्रहण की है जो कोरस की तरह एकरूप हो चुका है। रुडी तो आगे बढ़कर किताब आग में फेंक देता है। लेकिन लीज़ल काफ़ी संकोच के बाद अपने हाथ की किताब आग के हवाले करती है।

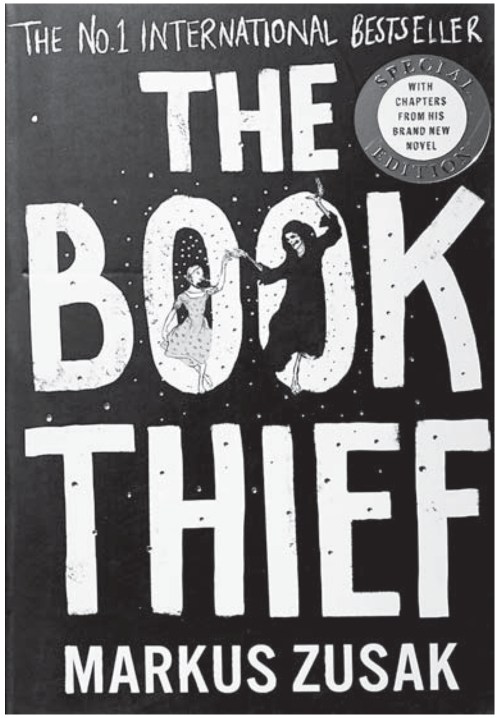
कुछ समय बाद रुडी को पता चलता है कि लीज़ल ने मेयर के घर से कुछ चुराया है, वह भी किताब! वह लीज़ल को 'बुक थीफ़' कहकर उलाहना देता है। जवाब में लीज़ल कहती है, "मैंने किताब चुराई नहीं, उधार ली है।"

दरअसल कहानी के भीतर छिपी परतें सत्ता और समाज द्वारा किए जा रहे व्यवहार की ओर इशारा करती हैं। सत्ता कहती है कि बौद्धिक गन्दगी मिटाने के लिए किताबें जला देनी चाहिए। निर्विचार और अतार्किक होने की राह पर बढ़ रहा समाज किताबें आग में झोंक देता है। इस तरह सत्ता और समाज किताबें चुरा रहा है और ऐसा करते हुए ज्ञान के आलोक से, तार्किकता से, जानकारियों और सवालों से बच भी रहा है, अपना जी चुरा रहा है। इस अन्धे युग में एक किशोरी, मेयर के निजी पुस्तकालय से और फिर जलते ढेर में से किताब उठा लेती है। इस नज़रिए से देखने पर लीज़ल हमें चोर नहीं, बल्कि किताबों की मुहाफ़िज़ नज़र आती है जो किताब अलमारी और फिर आग से बाहर नहीं निकालती, बल्कि अँधेरे से उजाले में लाती है।



कहानी नवम्बर 1942 में पहुँचती है, जर्मनी के ख़िलाफ़ इंग्लैण्ड ने युद्ध की घोषणा कर दी है। हवाई हमलों से बचने के लिए लीज़ल के मोहल्ले की सारी औरतें, बच्चे और चन्द बूढ़े बंकर में बैठे धमाकों से सिहर रहे हैं। अचानक लीज़ल कुछ कहना शुरू करती है। पहले तो लोगों को ताज्जुब होता है कि इस आफ़त की घड़ी में कुछ कहने का हौसला किसी बच्ची को कैसे हो सकता है। फिर उन्हें पता चलता है कि वह कोई कहानी कह रही है। कुछ पल रुक कर वह कहानी आगे बढ़ाती है। कहानी जीवन से प्यार होने और डर को जीत लेने के बारे में है, जो लीज़ल ने ख़ुद गढ़ी है। साहित्य, वैसे तो 'इस्तेमाल की चीज़' नहीं है, मगर वह कई मौक़ों पर काम आता है। लीज़ल की कहानी उसके पड़ोसियों में आशा और हौसले की रोशनी भरती है।

दो घण्टे ग्यारह मिनट की यह फ़िल्म पूरी तरह शिक्षा और स्कूल पर केन्द्रित नहीं है; बचपन, अभिभावकत्व, युद्ध, मानवतावाद, राष्ट्रवाद, नागरिक की भूमिका आदि जीवन के तमाम रंगों से इसे कैनवास पर बख़ूबी सजाया गया है। इसलिए इस फ़िल्म में सभी को अपने लिए कुछ नए मायने मिल सकते हैं। हालाँकि शिक्षा से सरोकार रखने वाले व्यक्तियों को यह फ़िल्म ज़रूर देखनी चाहिए ताकि स्कूल के ज़रिए रिसकर दिलो-दिमाग़ को क़ाबू कर लेने वाली तानाशाह सोच के प्रति वे थोड़ा अधिक जागृत, थोड़ा अधिक सचेत और थोड़ा अधिक संवेदनशील हो सकें।




अमित कोहली घुमक्कड़ी करने और पढ़ने के शौक़ीन हैं। तक़रीबन 15 साल एकलव्य फ़ाउण्डेशन के साथ विविध स्तरों पर काम किया है। शिक्षा के इतिहास, डिस्कूलिंग एवं वैकल्पिक शिक्षा में विशेष रुचि है। अमित स्वयं को वैचारिक रूप से गाँधीजी के क़रीब पाते हैं।
सम्पर्क : amt1205@gmail.com